# जीवात्मा–अन्तरात्मा–परमात्मा

**प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़,**
**पूर्व कुलपति, सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान**

शरीर पंचभूतात्मक है। चेतना पंचभूतात्मक नहीं है। चेतना के कारण ही पंचभूतात्मक शरीर चेतनवत् प्रतीत होता है। जैन दर्शन आत्मवादी दर्शन है। इस दर्शन में जीवात्मा, अंतरात्मा और परमात्मा का अस्तित्त्व स्वीकृत है। जीवात्मा आत्मा की पहली कक्षा है। इसमें देह और आत्मा का भेद ज्ञान नहीं होता। अंतरात्मा आत्मा की दूसरी कक्षा है। इसमें भेद ज्ञान प्राप्त हो जाता है। इसके उपलब्ध होने पर उसका प्रस्थान अपने देह मुक्त शरीर की ओर हो जाता है। परत्मात्मा आत्मा की सर्वोच्च कक्षा है। इसमें अपने मौलिक रूप में आत्मा अवस्थित हो जाता है। आत्मा में परमात्मा बनने की शक्ति है। यदि कोई अपनी समीक्षा करें और अवगुणों को निकाल दे तो आत्मा परमात्मा बन सकती है।

इस संसार में दो प्रकार के जीव है– 1. मुक्त जीव 2. संसारी जीव। मुक्त जीव को परमात्मा, ईश्वर, सर्व शक्तिमान, सिद्ध, शुद्ध जीव, आदि नाम से जाना जाता है। इन मुक्त जीवों के अतिरिक्त सभी जीव संसारी जीव हैं। जीव का संबंध सांसारिक जीवों के लिए प्रयुक्त किया जा रहा है। संसार में जितने शरीर हैं, उतने जीव हैं। जीव का लक्षण, उपयोगमय, कर्त्ता, स्वदेह परिणामी, संसारी रूप में बताया गया है। जीव का उपयोग लक्षण चेतना है। विश्व में कोई भी ऐसा जीव या प्राणी नहीं है, जिसमें चेतना विद्यमान न हो अर्थात अस्तित्व के रूप में प्रत्येक जीव चेतनयुक्त है।

समस्त जीवों में विकास की क्षमता समान होती है लेकिन पुरुषार्थ के कारण ही कम विकसित या अधिक विकसित जीव दिखाई देते हैं। सम्पूर्ण संसार जीवों से भरा है। संसार में जन्म लेने वाला जीव अज्ञान के कारण ऐसे कर्मों का अर्जन करता है जिसके कारण उसे कर्मों का बंधन होता है। इसलिए प्रत्येक जीव अपने कर्मो का स्वयं जिम्मेदार है और कर्म के परिणामों की भी

जिम्मेदारी स्वयं उसकी है यह जीव का कर्त्ता–भोक्तापन की विशेषता है। कर्त्तृत्व व भोक्तृत्व संसारी जीव या जीवात्मा में ही पाया जाता है।

जैन दर्शन में षड्जीवनिकाय का सूक्ष्म विवेचन किया गया है। षड्जीवनिकाय के अन्तर्गत पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक और त्रसकायिक जीवों की गणना होती है। पृथ्वी ही जिनका शरीर है ऐसे जीवों को पृथ्वीकायिक जीव कहा जाता है। वह अनेक जीव और पृथक् सत्वों वाली है। शस्त्र परिणति से पूर्ण वह सजीव कही गयी है। आज अनेक प्रकार के खनिज पदार्थों के लिए पृथ्वीकाय की हिंसा की जाती है। जल में रहने वाले जीव, जैसे मछली एवं अन्य प्राणी जलाश्रित जीव कहलाते हैं। अग्निकाय का असंयम करने से ऊर्जा के स्रोत कम हो रहे हैं। प्रकृति की दृष्टि में एक पौधे का जीवन भी उतना ही मूल्यवान है, जितना एक मनुष्य का है।

जिन जीवों में हलन–चलन एवं गमन की क्रिया होती है उन्हें त्रस जीव कहते हैं। जो संत्रस्त होते है, उद्विग्न होते हैं, संकुचित होते हैं, डरते हैं तथा त्रस आदि अवस्थाओं में जो इधर–उधर पलायन करते हैं, यह भी त्रस जीवों का लक्षण है। ये तीन प्रकार के है– सम्मूर्च्छनज, गर्भज, औपपातिक। रसज, संस्वेदज और उद्भिद् ये तीन सम्मूर्च्छनज हैं। सम्मूर्च्छनज का अर्थ है गर्भाधान के बिना ही यत्र–तत्र आहार ग्रहण कर शरीर का निर्माण करना। अंड़ज, पोतज और जरायुज ये गर्भज जीव हैं। उपपात से जन्म लेने वाले देव और नारक औपपातिक कहलाते हैं। त्रसकायिक जीव अंध, बधिर, मूक, पंगु और अवयवहीन मनुष्य की भांति अव्यक्त चेतना वाले होते हैं। शस्त्र से छेदन–भेदन करने पर जैसे जन्मना इन्द्रिय विकल मनुष्य को कष्टानुभूति होती है, वैसे ही त्रसकायिक जीवों को भी होती है। कीट, पतंग, कुंथु, पिपीलिका, दो इन्द्रियवाले जीव, सब तीन इन्द्रियवाले जीव, सब चार इन्द्रियवाले जीव, सब पांच इन्द्रियवाले जीव, सब तिर्यक्योनिक जीव, सब नैरयिक जीव, सब मनुष्य, सब देव और सब प्राणी सुख के इच्छुक हैं। ये सब त्रसकायिक कहलाते हैं। आत्मा शरीर से अवच्छिन्न होने पर जीवात्मा कहलाती है। जीवात्मा प्रति शरीर भिन्न है। अंतरात्मा सब में एक ही है। कर्मों के आवरण के कारण अंतरात्मा जीवात्मा बन जाती है। प्रत्येक जीवात्मा अपने कृत कर्मों का उपभोग करती है।

मनुष्य जन्म के सिवा और जितनी योनियां हैं, सभी केवल कर्मों का फल भोगने के लिये ही मिलती हैं। मानव जीवन का परम लक्ष्य आत्मामृत की प्राप्ति ही है। वह आत्मा दो प्रकार की है, एक जीवात्मा दूसरी परमात्मा। परमात्मा या ईश्वर सर्वज्ञ है, और एक है। जीवात्मा प्रत्येक शरीर में भिन्न–भिन्न व्यापक और नित्य है। आत्मा नित्य शुद्ध–बुद्ध मुक्त है। वह सच्चिदानन्द स्वरूप है। यही परम सत है।

जीवात्मा, अंतरात्मा और परमात्मा में कर्मों को लेकर भेद है। प्रत्येक शरीर में जीवात्मा व्याप्त है। अंतरात्मा सभी शरीरों में एक है। आत्मा पर जब कर्मों का आवरण पड़ता है तो आत्मा का प्रकाश अवरुद्ध हो जाता है। जब कर्मरज नष्ट हो जाता है तो आत्मा स्वप्रकाशी हो जाता है। स्वप्रकाशी आत्मा कर्मों के क्षीण होने पर परमात्मा बन जाता है। परमात्मा की अवस्था शैलेशी अवस्था है। इस अवस्था में आत्मा ज्ञान, दर्शन चारित्र और तप से कर्मों को क्षीण कर शुद्ध, बुद्ध, मुक्त बन जाता है। यही आत्मा का स्वाभाविक स्वरूप है। जब आत्मा अपने स्वाभाविक स्वरूप में अवस्थित हो जाता है तो वह मुक्त हो जाता है।